प्रवचन नं. ६३ कलश-८ के बाद की टीका दिनाङ्क २०-०८-१९७८ रविवार
श्रावण कृष्ण २, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्रीसमयसार की १३ वीं गाथा के कलश का भावार्थ है। नीचे टीका है न टीका, संस्कृत टीका है। अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर मुनि उत्कृष्ट आत्मा का प्रभाव-अनुभवी, उनकी टीका है। सूक्ष्म बात है।

क्या कहते हैं, यह देखो! सूक्ष्म विषय है। **अब, जैसे नवतत्त्वों में एक जीव को ही जानना भूतार्थ कहा है,.....** क्या कहा? जीव की-आत्मा की वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था में नवतत्त्व का भाव पर्याय में-भेद में होता है परन्तु वह कोई सम्यग्दर्शन उनसे होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! जीव की एक समय की वर्तमान पर्याय-अवस्था और पुण्य-पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष — ये पर्यायें हैं। इन नव तत्त्वों में तो पर्यायबुद्धि से, व्यवहारनय से ये हैं, परन्तु जिसको अपना कल्याण / सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, धर्म की पहली सीढ़ी (प्रगट करना हो) तो इन नव तत्त्वों में से भिन्न होकर.... आहाहा! ऐसी बात है प्रभु!

यह बाहर की धमाल और बाहर की क्रिया तो जड़ से होती है, अन्दर में राग-शुभराग आता है, वह भी बन्ध का कारण है। वह सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है। आहाहा! यह यहाँ नव तत्त्व में नौ प्रकार की वर्तमान पर्याय के भेदों में एक जीव को ही जानना। आहा...! सामान्यरूप, जो पर्याय में कभी नहीं आता, आहा...! ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... आनन्द का पिण्ड एकरूप स्वरूप को जानना, वह भूतार्थ है। आहाहा! उस त्रिकाली चीज को अन्तर्मुख होकर जानना, वही भूतार्थ चीज है, सत्य चीज है। आहाहा! है? **एक जीव को ही जानना....** चाहे तो संवर हो, निर्जरा हो, मोक्ष की पर्याय (हो) परन्तु उसमें जो सामान्य जीवद्रव्य — एकरूप है, उस पर नजर करने से — अभेद चीज की नजर करने से वह अभेद चीज ही भूतार्थ है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

श्रोता : एक भी अक्षर समझ में आये ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है! क्या कहा? प्रभु! तीन चार दिन से तो (स्पष्टीकरण) चलता है। नव तत्त्व में जीव की एक समय की पर्याय को यहाँ नव तत्त्व में जीव गिना गया

है। पण्डितजी! यह हमारे पण्डितजी आये, ये तो, भाई! नहीं आये, फूलचन्दजी! बुखार आया है, हैं वह तो आये न? भाई फूलचन्दजी आते हैं, बुखार आया है।

यह आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप ध्रुवस्वरूप है, उसकी वर्तमान पर्याय अर्थात् अवस्था, अर्थात् हालत में जो पर्याय है, उसे यहाँ जीव कहा गया है और उसमें दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव होता है, वह शुभ की अपनी योग्यता से अपने काल में अपने कारण से उत्पन्न होता है और हिंसा, चोरी, विषय, झूठ, भोग-वासना, ये पापपरिणाम भी अपने काल में अपने कारण से विकृत अवस्था उत्पन्न होती है और दोनों मिलकर आस्रव भी अपने कारण से अपनी पर्याय का वह काल है तो उस कारण से आस्रव उत्पन्न होता है और राग में रुकना, वह भावबन्ध भी अपने कारण से वहाँ भावबन्ध उत्पन्न होता है और संवर वह अपनी पर्याय में जो शुद्धता प्रगट होती है, वह भी अपने काल में... पवित्र सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय, वह संवर है, वह अपने काल में उत्पन्न होती है। निर्जरा, वह भी अपने काल में, वह शुद्धि से वृद्धि होती है, वह भी पर्याय में अपने काल में निर्जरा अर्थात् शुद्धि की वृद्धि अथवा अशुद्धता का नाश, वह निर्जरा अपने काल में होती है और मोक्ष भी अपने काल में पर्याय में केवलज्ञान होकर उत्पन्न हो परन्तु यह जो नौ प्रकार हैं, उनमें त्रिकाली आत्मा नहीं आया। आहाहा! आहाहा!

इन नौ प्रकारों को भी छोड़कर... है? उन **नव तत्त्वों में....** यह पर्याय के नौ प्रकार के तत्त्व अर्थात् भेद में **एक जीव को ही....** आहाहा! इस संवर के काल में भी एक जीव ही अन्दर त्रिकाल है, वह उपादेय है। आहाहा! निर्जरा के काल में भी भगवान एकरूप चिदानन्द की ध्रुव शीतल शिला पड़ी है, वह एक ही उपादेय है और मोक्ष की पर्याय तो अभी नहीं है परन्तु मोक्ष की जो केवलज्ञान पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता है। आहाहा!

नवतत्त्वों में एक जीव को ही.... अन्तर्मुख शुद्ध चैतन्यघन भगवान एकरूप ध्रुव सामान्य सदृश नित्यानन्द प्रभु जो एकरूप वस्तु है, आहा...! उसे ही **जानना भूतार्थ कहा है,...** उसे जाना हुआ, उस वस्तु को भूतार्थ कहा। आहाहा! ऐसी चीज है भाई! धर्म की शुरुआत भी ऐसे होती है। कोई यह क्रिया और व्रत करना, तप करना, भक्ति करना, वह

तो पर्याय में विकार का भेद है। आहाहा! **इन नव तत्त्वों में एक...** वे नौ अनेक हुए, पर्याय की अवस्था में अनेक भेद हुए, उसमें से **एक जीव को ही...** एकान्त लिया है। आहाहा! त्रिकाल अस्खलित, पर्याय में भी जिसका आना नहीं होता। आहाहा! ऐसी जो चीज नित्यानन्द प्रभु उसे ही एक जानना यथार्थ, भूतार्थ, सत्य कहा जाता है। समझ में आया? एक बात हुई। अब दूसरी... तीन बातें हैं।

उसी प्रकार.... जैसे नव तत्त्व के भेद में से अकेले त्रिकाल जीव का अवलम्बन लेना, उसका आश्रय करना ही भूतार्थ है, वही सम्यग्दर्शन का विषय है। तथापि सम्यग्दर्शन का विषय एकरूप चैतन्य है, तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है; उस पर्याय का विषय, पर्याय नहीं है। आहाहा! बापू! जन्म-मरणरहित सम्यग्दर्शन की क्रिया कोई अलौकिक है। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में ज्ञायक त्रिकाली की श्रद्धा-ज्ञान होते हैं परन्तु वह त्रिकाली चीज उस पर्याय में नहीं आती। आहाहा! अब ऐसा सूक्ष्म!

उसी प्रकार एकरूप से प्रकाशमान आत्मा.... आहाहा! भगवान तो एकरूप चैतन्यप्रकाश ज्योति-प्रकाशमान ज्योति आत्मा है, इतनी बात। **अब, एकरूप से प्रकाशमान आत्मा के अधिगम के उपाय....** उसको जानने के उपाय। **प्रमाण, नय, निक्षेप हैं....** प्रमाण की व्याख्या करेंगे। द्रव्य-वस्तु और पर्याय दो का ज्ञान करे, वह प्रमाण है और नय — दो में से एक का अंश का विषय करे, वह नय है। चाहे तो सामान्य का विषय करे, चाहे तो विशेष का विषय, परन्तु एक अंश आया, नय में एक अंश आया, प्रमाण में दोनों अंश साथ में आये — ऐसा जानने का उपाय है, वह भी विकल्पात्मक है। आहाहा! वह भी, आहाहा! **प्रमाण, नय, निक्षेप....** निक्षेप अर्थात् नाम से ज्ञेय पदार्थ जानना; स्थापना से जानना; योग्यता से-द्रव्य की योग्यता से जानना; और भाव की पर्याय से जानना। ये ज्ञेय के जो चार भेद, वे निक्षेप के भेद हैं। उस निक्षेप से भी अपने को जानना, वह भी एक विकल्प है। आहाहा!

जहाँ नव तत्त्व का भेद भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं, वहाँ नय-निक्षेप और प्रमाण भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! वीतरागमार्ग, अनन्त

काल हुआ... आहाहा! कभी इसने ध्यान दिया ही नहीं। आहा...! पाटनीजी! बाहर ही बाहर में भटक-भटककर... आहाहा! अन्तर पाताल कुँआ पड़ा है, एक समय की पर्याय के समीप में, समीप में सारा ध्रुवतत्त्व नित्यानन्द प्रभु है, उसे अधिगम का- जानने का उपाय है, **वे भी निश्चय से अभूतार्थ हैं....** क्या कहा? प्रमाण, नय,... प्रमाण अर्थात् दो — द्रव्य और पर्याय का ज्ञान साथ करे वह प्रमाण परन्तु वह विकल्पात्मक प्रमाण यहाँ लिया है। नय त्रिकाल का एक अंश करनेवाला नय, वह निश्चय; इस वर्तमान पर्याय का विषय करनेवाला व्यवहार परन्तु दोनों विकल्पात्मक, रागात्मक लिये हैं। आहाहा! और निक्षेप, वह तो ज्ञेय का भेद है, वह भी विकल्पात्मक निक्षेप.... यहाँ तो भावनिक्षेप भी विकल्पात्मक है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् मेरी पर्याय पूर्ण शुद्ध है — ऐसा भावनिक्षेप भी भेदवाली दशा है तो वह भी विकल्प है। आहाहा! वह निश्चय से तो झूठा है। आहाहा! अपना अनुभव करने में यह प्रमाण — नय-निक्षेप बिल्कुल सहायता नहीं करते। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का राग भी अपने अनुभव में बिल्कुल सहायता नहीं करता, उसकी मदद नहीं है और उसे छोड़कर अपने स्वभाव में दृष्टि करे, तब सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे इन प्रमाण नय-निक्षेप का ज्ञान हो परन्तु वे त्रिकाल की दृष्टि करने में अभूतार्थ हैं। भेद प्रमाण — सविकल्प प्रमाण, यह सविकल्प लेना। सविकल्पनय, रागवाला नय, रागवाला प्रमाण, और रागवाला निक्षेप, वह भी, आहाहा! ज्ञायक चिदानन्द की दृष्टि - अनुभव करने पर — सम्यग्दर्शन के ध्येय ध्रुव पर दृष्टि करने से वे नय-निक्षेप प्रमाण भी झूठे हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

अभी तो धर्म की पहली (सीढ़ी) सम्यग्दर्शन (की बात है)। यद्यपि निश्चय से तो चारित्रधर्म है परन्तु उस चारित्रधर्म का कारण जो सम्यग्दर्शन है। ऐसा लेते हैं न? चारित्रं खलु धम्मो, आहाहा! आत्मा में वीतराग पर्याय का जमना, आहाहा! जम जाना — आनन्द -आनन्द की दशा, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! वह भी एक समय की दशा है, उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! सूक्ष्म बात भाई! अभी तो बहुत गड़बड़ कर दी है, प्रभु! और दरकार कुछ कितनों को तो अन्दर पड़ी नहीं है, जिसमें जन्में बस वह भक्ति और मन्दिर और सबेरे स्तुति करना.... सेठ! बस हो गया धर्म।

श्रोता : वह सरल पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सरल पड़ता है ? ज़हर है वह सरल पड़ता है। यह राग तो ज़हर है। यहाँ तो नय-निक्षेप-प्रमाण का ज्ञान भी अभूतार्थ है। स्वरूप की दृष्टि करने में अभूतार्थ है, ऐसा है, प्रभु!

श्रोता : भक्ति ज़हर कहलाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की भक्ति का भाव विषकुम्भ-ज़हर का घड़ा है।

श्रोता : यह तो नयी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (समयसार का) मोक्ष अधिकार (है) वह मोक्ष अधिकार, उसमें — मोक्ष अधिकार में विषकुम्भ कहा है प्रभु! तुझे पता नहीं है। अमृत का सागर अन्दर डोलता है, नाथ! अमृतस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का अमृतस्वरूप ध्रुव अन्दर विराजमान है, प्रभु! उसकी अपेक्षा से शुभभाव भी ज़हर है। आहाहा! अरे! उसको तो असत्यार्थ कहा, परन्तु नय, निक्षेप और प्रमाण से ज्ञान करना भी असत्यार्थ और अभूतार्थ है। आहाहा! भाई! यह मार्ग तो अन्तर का है। आहाहा! राग से, पर से उदास होकर, अन्तर ज्ञायकभाव को पकड़ना — त्रिकाली आनन्द के नाथ को पर्याय में पकड़ना, वह कोई अपूर्व बात है। वह अनन्त काल में कभी नहीं किया। आहाहा! कहो, पण्डितजी! बाकी पण्डिताई भी अनन्त बार हुई, मूर्खता भी अनन्त बार हुई, रंक भी अनन्त बार हुआ और राजा भी अनन्त बार हुआ, नारकी भी अनन्त बार हुआ और नौवें ग्रैवेयक का देव, इकतीस सागर की स्थिति (वाला देव भी) अनन्त बार हुआ। आहाहा!

इन सबका-भेद का लक्ष्य छोड़कर अपना चैतन्य भगवान... आहाहा! ध्रुव एकरूप रहनेवाली चीज है, उसका आश्रय करने से-उस भूतार्थ चीज का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शनधर्म, स्वरूप की दशा की शुरुआत है और उसमें बाद में आत्मा जो सम्यग्दर्शन में जानने में आया और अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान अनन्त... अनन्त शक्ति में एक-एक शक्ति अनन्त प्रभुता से भरी पड़ी है। आत्मा एक है, अन्दर शक्तियाँ अनन्त है। गुण, गुण कहो या शक्ति कहो; और एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्यता पड़ी है और एक-एक शक्ति की अनन्त पर्याय है — इन सबको - भेद को

छोड़कर.... आहाहा! उसका (भेद का) ज्ञान पहले आता है, जवाहरात की दुकान में प्रवेश करने से पहले, आँगन में खड़े रहते हैं, वैसे नय, निक्षेप, प्रमाण से आत्मा को जानना, वह आँगन में आया है। अन्दर प्रवेश करने में वह काम नहीं करता। अपने कल आया था, बहिन के वचनों में कि गुफा में जाना हो, गुफा में - वहाँ तक वाहन जाने का काम करता है परन्तु अन्दर जाने में वह वाहन काम नहीं करता, छोड़ देना पड़ता है। आहाहा! वैसे ही आत्मा को जानने में विकल्प पहले आता है — प्रमाण, नय, निक्षेप का (विकल्प आता है) परन्तु अन्तर अनुभव की गुफा में जाने में वह कुछ काम नहीं करता।

वह कहा था — (समयसार की) ४९ गाथा है (उसकी) संस्कृत टीका आचार्य जयसेन की है, उसमें यह लिया है — अन्तर शान्ति समाधिरूपी गिरि की गुफा में प्रवेश करते हैं — ऐसा पाठ है। यहाँ पुस्तक है? नहीं। श्रीमद् जैसी बड़ी (पुस्तक) होना चाहिए। नहीं? कल यहाँ आया थी। ४९ गाथा है समयसार की, उसकी टीका है। जयेसनाचार्य की (टीका है) उसमें ऐसा लिया है कि भगवान आत्मा अपने आनन्द के पर्वत-अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर, उसमें प्रवेश करने में... आहाहा! वह गिरिरूपी गुफा, वह समाधि शान्ति वीतरागता वहाँ काम करती है। आहाहा! वहाँ रागादि, निमित्त आदि कुछ काम नहीं कर सकते। आहाहा! ऐसी बात है भाई! कठिन पड़ती है न, इसलिए सोनगढ़ को ऐसा कहते हैं कि एकान्त है... एकान्त है... कहो प्रभु! तुम भी भगवान हो सब। दूसरे प्रकार से कहते हैं और यह सब दूसरी पद्धति से कहते हैं। यह कहें उसमें कोई विरोध करने की जरूरत नहीं है, उसकी बुद्धि में वह आया वह कहेगा परन्तु सत्य तो कोई भिन्न चीज है। आहाहा! 'जिसमें जितनी बुद्धि है इतनो दिये बताय, वाकौ बुरो न मानिये और कहाँ से लाय।' आहाहा! यहाँ कहते हैं कि निश्चय से तो प्रमाण.... सम्पूर्ण द्रव्य-पर्याय का ज्ञान करनेवाला प्रमाण-सविकल्प (प्रमाण), नय.... प्रमाण दो प्रकार का है एक सविकल्प (प्रमाण) निर्विकल्प (प्रमाण)। यहाँ इस सविकल्प की बात है। नय दो प्रकार के हैं — सविकल्प — रागसहित और एक रागरहित। यहाँ रागसहित नय की व्याख्या है। निक्षेप वह भी विकल्प है, जरा चार भेद डालना.... आहाहा! भगवान स्थापना निक्षेप है, यहाँ उन पर लक्ष्य जाना, वह शुभभाव है। समझ में आया?

वह कहा था — एक बार वहाँ बहुत प्रश्न हुए न? वहाँ हमारे सम्प्रदाय में बहुत

प्रश्न होते थे न? ८३ की साल है, ८३ की — कितने वर्ष हुए? ५१। तो एक सेठ था (वह) ऐसा कहता था — स्थानकवासी था, हम भी उसमें थे न? पैसेवाला था। ७० वर्ष पहले की बात है, उसके पास दस लाख रुपये, ४० हजार की आमदनी थी, उस समय, हाँ! अभी तो पच्चीस-तीस गुना हो गया, कीमत घट गयी, उस समय का एक लाख, अभी का पच्चीस लाख.... तो एक बार उसने ऐसा कहा कि जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक मूर्ति की पूजा, मूर्ति की सेवा आदि आती है, सम्यग्दृष्टि होने के बाद मूर्ति की सेवा नहीं — यह उसने कहा। मैंने कहा — ऐसा नहीं है। सुनो, कि जब आत्मा का-जो भूतार्थ त्रिकाल चीज है, उसका जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ तो उसके साथ भावश्रुतज्ञान हुआ... गांगुलीजी! थोड़ा सूक्ष्म विषय है, थोड़ा अभ्यास करना पड़ेगा... उस होम्योपैथी (दवाई) का बहुत अभ्यास किया है न? नरम व्यक्ति है। आहाहा!

तो (हमने) कहा कि जब आत्मा में सम्यग्दर्शन होता है — एकरूप चिदानन्द की दृष्टि और अनुभव (होता है) तब उसको भावश्रुतज्ञान होता है। भावश्रुतज्ञान के दो भेद पड़ते हैं — निश्चय और व्यवहारनय। उस भावश्रुतज्ञान का एक भेद व्यवहार और निक्षेप का एक भेद स्थापना, वह व्यवहारनय का विषय समकिती को ही होता है। है भले ही शुभराग.... समझ में आया? बड़ी चर्चा होती थी। परन्तु मैंने कहा भाई! हम ऐसा, मैं इसमें (स्थानकवासी में) आ गया हूँ; इसलिए ऐसा मानना यह हमारे नहीं है। यह तो अन्दर में कसौटी से सत्य हो, हम तो वह मानेंगे। हम सम्प्रदाय में रहे, इसलिए सम्प्रदाय की दृष्टि हमें मानना, यह हमारे नहीं है। हमें तो सत्य कसौटी पर आता है, वह मानना पड़ेगा। अतः वास्तव में तो भावश्रुतज्ञानी को निश्चय और व्यवहार श्रुतज्ञान के दो अवयव हैं। श्रुतज्ञान अवयवी और नय अवयव है, तो श्रुतज्ञानी को ही व्यवहारनय होता है। है भले विकल्प। समझ में आया? और उस श्रुतज्ञानी को ही निक्षेप पर दृष्टि जाती है विकल्प से, तो यथार्थ में समकिती को ही व्यवहार से स्थापनानिक्षेप पूज्य है। लालचन्दभाई! आहाहा! भाई! मार्ग यह है। कोई उल्टी-सुल्टी गड़बड़ करे तो वह नहीं चलता। आता है — श्रुतज्ञान का भेद-व्यवहारनय एक आता है और वह शुभरागरूप भी है और उसका विषय भगवान की प्रतिमा भी है परन्तु आता है वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है सेठ!

सेठ तो वहाँ कारंजा में बहुत पढ़ा है, नहीं पढ़ा है ? आहाहा ! परन्तु यह नहीं पढ़ा। सेठ ! ऐसी बात है। आहा... !

कहते हैं कि अन्दर में प्रमाण, नय, निक्षेप, जो पहले क्या कहते हैं ? एकरूप से प्रकाशमान आत्मा... भगवान तो अन्दर एकरूप प्रकाशमान चैतन्य है। उसमें उसके जानने का उपाय अनेक — प्रमाण, नय, निक्षेप। आहाहा ! एकरूप त्रिकाली परमात्मा भगवान प्रकाशमान परमात्मा है, उसको जानने के उपाय अनेक हैं परन्तु वे अनेक उपाय भी अभूतार्थ हैं। आहाहा ! यह कहना... है या नहीं ? आहाहा ! वह उपाय, वह व्यवहार से जानने का उपाय, एकरूप को जानने में अनेक से उपाय, वे एकरूप को जानने की अपेक्षा में अनेकरूप से जानने का भाव अभूतार्थ है। अरे प्रभु ! ऐसी बात है भाई ! आहाहा ! पण्डितजी !

अब प्रमाण की व्याख्या करते हैं। **उनमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है....** देखो ! प्रमाण, नय, निक्षेप का — जानने का भाव आता है, विकल्पात्मक रागस्वरूप.... **उसमें भी यह आत्मा एक ही भूतार्थ है।** आहाहा ! यह नय, निक्षेप, प्रमाण का विकल्प है, उससे भिन्न भगवान... जानने का उपाय है, उससे भी भिन्न है — ऐसी बात है, भाई ! क्या हो ? सम्यग्दर्शन का जगत् को मूल्य नहीं है, शुभभाव का मूल्य और बाहर की इस धूल का-पैसे का-इज्जत का — सुन्दर शरीर और मकान बड़ा महल हो, पचास-पचास लाख का मन्दिर और मकान अपने रहने का (हो उसका मूल्य है)। है न गोवा में, है न ? गोवा में एक था बेचारा, अभी गुजर गया। दो लड़के हैं, दो अरब चालीस करोड़ बहुत रुपये थे, बहुत पैसे परन्तु अन्त में एक सेकेण्ड में दो-चार-पाँच मिनिट में ऐसा दर्द हुआ, कुछ दर्द है ऐसा कहा और डॉक्टर को बुलाओ, बस डॉक्टर को बुला के आते थे, उससे पहले (तो) चले जाओ परलोक में भटकने को। शान्तिलाल खुशाल !

श्रोता : पैसा था तो क्यों गुजर गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा था पड़ा रहा पैसा; सामने चालीस लाख का मकान रहने का था, चालीस लाख का गोवा में है, दस-दस लाख के दो हैं और चालीस लाख का एक — साठ लाख के मकान गोवा में हैं, उसका लड़का आया न।

श्रोता : सत्तर लाख का मकान मुम्बई में रमणीकभाई का।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह रमणीकभाई का लो न, हमारे। हम ऐसे उतरे थें न मुम्बई, कौन सी तिथि, ८७ शरीर में जन्म की थी न ८७ वर्ष की; तो आमोदवाले हैं न आमोद! हमारे पालेज के पास आमोद है, गुजराती-तो वहाँ के रहनेवाले रमणीकभाई हैं, दो भाई हैं तो एक रहने का मकान सत्तर लाख का है, पाँच-छह करोड़ रुपये हैं, नरम व्यक्ति है, गुजराती है। हमारे पालेज में हमारी दुकान थी न तो साथ में आमोद था तो हम तो आमोद को जानते थे। कहा तब हम आमोद के रईस हैं, बड़ी दुकान है, कुछ नाम है, कुछ पैढ़ी का (श्रोता : रौनक इण्डस्ट्रीज) अपने को याद नहीं रहता.... तो उस मकान में हम उतरे थे। सत्तर लाख का एक मकान, उसमें क्या है? धूल में। मकान-मकान में — जड़ में रहा, वह तेरी चीज में कहाँ आया? तुम वहाँ कहाँ रहते हो? तुम तो अपने आत्मा के स्वभाव में रहनेवाली चीज हो। आहाहा!

विभाव में आना, वह भी तेरी चीज नहीं, वह तो परदेश है, कल आया था - भजन में भी आया था। आहाहा! शुभ और अशुभराग होता है, वह परदेश है, प्रभु! तेरा देश नहीं। आहाहा! स्वदेश तो आनन्द का नाथ प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय प्रभुता, पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण। **इदमं** ऐसी पूर्ण शक्ति का भण्डार भगवान वह परमात्मा, वह तेरा स्वदेश है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं यह प्रमाण, नय और निक्षेप भी निश्चय से तो झूठे हैं। आहाहा! तो क्यों आते हैं? कि आते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरनाथ जो आत्मा कहते हैं, और दूसरे — अज्ञानी आत्मा कहते हैं, उससे भिन्न होने को, यथार्थ आत्मा परमेश्वर ने क्या कहा, उसके लिये नय, निक्षेप, प्रमाण आता है। समझ में आया? परन्तु आता है परन्तु है अभूतार्थ।

श्रोता : शुद्धता, अशुद्धता को बताते नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते नहीं, कहा न, आता है। यह क्या चीज है? — ऐसा जानने को आता है। परन्तु अन्दर जानने की-वहाँ जाना है, उसमें वह नय, निक्षेप, प्रमाण कुछ काम नहीं करता। आहाहा!

श्रोता : रास्ता बताकर छूट जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने रास्ता नहीं बताया है। देखा तो अपनी पर्याय से अभेद में जाकर देखा है, उसने दिखाया है, भेद से दिखाया नहीं। ऐसा कहा जाता है। आठवीं गाथा में आया न ? सन्त, आचार्य भी आत्मा एकरूप है, उसे समझाने के लिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा — ऐसा सन्त भी व्यवहार में आकर कहते हैं, विकल्प में आकर सन्त (ऐसा कहते हैं) यहाँ केवली की बात नहीं है, क्योंकि केवली तो उस समय थे नहीं, सन्त थे समयसार के समय। अत: उसकी बात करते हैं कि सन्त भी अपने स्वरूप में से बाहर निकलकर, जरा विकल्प-व्यवहार आता है तो व्यवहार में समझाने को दुनिया को कहते हैं कि 'आत्मा' तो वह आत्मा नहीं समझते, तो उन्हें ऐसा बतलाते हैं कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय को प्राप्त हो वह 'आत्मा'। यह भी व्यवहार हुआ। ऐसा व्यवहार से समझाते हैं। परन्तु व्यवहार का अनुसरण समझनेवाले को नहीं करना और कहनेवाले को भी व्यवहार का अनुसरण नहीं करना। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, भाई! तुम प्रभु हो, हाँ! तेरी प्रभुता वाणी में नहीं आती, नाथ! आहाहा! यह तेरी प्रभुता नय, निक्षेप या प्रमाण में, सविकल्प में भी नहीं आती, नाथ! अरे! तुम पामर नहीं हो, प्रभु! तू अल्पज्ञ नहीं, यह राग तेरा नहीं, राग तुझमें नहीं। आहाहा! प्रभु! तुम तो सर्वज्ञस्वभावी हो न अन्दर! अकेले ज्ञानस्वभावी कहो 'ज्ञ' स्वभावी कहो या सर्वज्ञस्वभावी, आहा...! स्वभाव, हाँ! पर्याय में भले अल्पज्ञता हो परन्तु स्वभाव तो उसका सर्वज्ञस्वभावी प्रभु है। आहाहा! इसकी प्रभुता में कभी कमी-न्यूनाधिकता नहीं हुई — ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा का अनुभव करने पर यह प्रमाण, नय, निक्षेप झूठा होता है, उनमें से यह एक आत्मा ही भूतार्थ है। आहाहा! एक ज्ञायकभाव यह सत्य वस्तु है। यह दृष्टि में लेना। आहाहा!

प्रमाण, नय, निक्षेप का ज्ञान भी विकल्पात्मक है, वह दृष्टि में नहीं लेना। आहाहा! ऐसी बात है। अब **(क्योंकि ज्ञेय और वचन के भेदों से प्रमाणादि अनेक भेदरूप होते हैं)।....** अब उसमें से सूक्ष्म विषय है। भाई! यह गाथा... **उनमें से पहले, प्रमाण दो प्रकार के हैं - परोक्ष और प्रत्यक्ष....** प्रमाण के दो भेद हैं एक परोक्ष और एक प्रत्यक्ष। **उपात्त और अनुपात्त पर (पदार्थों) द्वारा प्रवर्ते वह परोक्ष है....** इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तित और प्रकाश तथा उपदेश द्वारा प्रवर्ते वह परोक्ष है। आहाहा! इन्द्रिय और मन के द्वारा ज्ञान का प्रवर्तन हो, वह परोक्ष है और प्रकाश तथा उपदेश के द्वारा प्रवर्तन हो, वह भी

परोक्ष है। आहाहा! क्या कहा? कि सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि आयी — ख्याल में-लक्ष्य में आयी, परन्तु वह भी परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रिय से ख्याल में आया न? निमित्त से ख्याल में आया न? परोक्ष है और वह सविकल्प परोक्षज्ञान है। आहाहा! **और केवल आत्मा से ही....** एक भगवान आत्मा से ही **प्रतिनिश्चितरूप से....** प्रति अर्थात् वास्तविकरूप से **प्रवृत्ति करे, सो प्रत्यक्ष है।...** अपने आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान काम करे, वह प्रत्यक्ष है।

(प्रमाण ज्ञान है। वह ज्ञान पाँच प्रकार का है...) पहले दो भेद किये — परोक्ष और प्रत्यक्ष। इतने भेद किये परन्तु अब उसके भेद — **(ज्ञान पाँच प्रकार का है....)** वह प्रमाण का भेद है — मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। उसमें **(उसमें से मति और श्रुतज्ञान परोक्ष हैं,....)** क्योंकि इन्द्रिय और मन के द्वारा प्रवर्तता है। **(अवधि और मन:पर्ययज्ञान विकल-प्रत्यक्ष हैं....)** थोड़ा प्रत्यक्ष है। आहाहा! समझ में आया? **(और केवलज्ञान सकल-प्रत्यक्ष है....)** पूर्ण केवलज्ञान तो सम्पूर्ण (प्रत्यक्ष है) **(इसलिए यह दो प्रकार के प्रमाण हैं।)**

इनमें, दो का **दोनों में प्रमाता,....** जाननेवाला **प्रमाण** ज्ञान और **प्रमेय** — ज्ञान का विषय प्रमेय **के भेद का अनुभव करने पर तो भूतार्थ हैं,....** ये पर्याय में हैं। प्रमाण, नय, प्रमाण का विषय परोक्ष-प्रत्यक्ष का पर्याय में आता है, **सत्यार्थ है।** पर्याय की अपेक्षा से सत्यार्थ है। केवलज्ञान, केवलज्ञान की अपेक्षा से है, वह सत्यार्थ है। परोक्ष ज्ञान भी है, वह वर्तमान है, वह भी सत्यार्थ है **और जिसमें सर्व भेद गौण हो गये हैं....** इन परोक्ष और प्रत्यक्ष का-प्रमाण का भी भेद-लक्ष्य जिसने छोड़ दिया है, उसका नाम गौण करके.... आहाहा!

हलुवा होता है हलुवा तो उसकी विधि क्या है, हलुवा बनाने की? कि पहले तो आटा घी में सेंकते हैं बाद में शक्कर और गुड़ का पानी डालते हैं परन्तु कोई ऐसा माने कि यह आटा तो घी पी जाता है तो हमें घी का बचाव करना है तो तुझे क्या करना है? तो बाद में गुड़ का पानी डालना है तो पहले गुड़ के पानी में आटा सेंको, बाद में घी डालो... हलवा नहीं होगा, वह लेई (भी) नहीं होगी। तुझे पता नहीं। फोड़े पर (लगाने की) पोटिश होती

है न! क्या कहते हैं? पोटिश, पोटिश नहीं होगी, क्योंकि पोटिश में तो बहुत थोड़ा घी, विशेष नहीं पड़ता और थोड़ा पड़े बिना नहीं रहता। यह हमारी काठियावाड़ी भाषा में जातु-बल्तु घी — ऐसा सुना है। हमने कुछ किया नहीं है, बहिनें कहती हैं कि जातु-बल्तु घी डालना, इस पोटिश पर। जातु-बल्तु अर्थात् घी थोड़ा डले और बिल्कुल न डले ऐसा नहीं। उसमें तो घी तो बाद में डालना है, पहले आटा महंगा पड़ता है, महंगी चीज है। घी में आटा सेंकना तो घी पी जाता है, महंगा पड़ता है। इसकी अपेक्षा पहले आटे को गुड़ के पानी में सेंकों, बाद में घी डालो, पोटिश नहीं होगी, तीनों जायेंगे। कौन से तीनों? आटा, शक्कर, और घी (सब) तेरे व्यर्थ जायेंगे। वैसे ही भगवान आत्मा को अन्तर जानने में बाहर का साधन तुझे सरल पड़े, परन्तु उससे भाव नहीं होगा; भव-भ्रमण का भाव होगा, भाई! आहाहा! और यह अन्दर से महंगा पड़े, आहाहा! अन्दर में जाना, विकल्प भी काम नहीं करे, वहाँ प्रमाण का ज्ञान भी वहाँ काम नहीं करे। आहाहा! ऐसी महंगी चीज में पहले से कोई व्रत, नियम कर लो और बाद में सम्यग्दर्शन होगा.... धूल में नहीं होगा। धूल में का अर्थ क्या? पुण्य, पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं होगा; तेरे पापानुबन्धी पुण्य होगा। आहाहा! बात ऐसी है! अरेरे! यह चीज ही दुनिया को नहीं मिली। आहाहा! सत्य बात सुनने को नहीं मिलती। आहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वे सर्व — जिसमें सर्व भेद गौण हैं। प्रत्यक्ष और प्रमाण, वह इन्द्रिय से और प्रकाश से जानने में आवे, वह परोक्ष और सीधा आत्मा से जानने में आवे — ऐसा प्रत्यक्ष। यह विकल प्रत्यक्ष, थोड़ा प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष, परन्तु यह सब भेद, पर्याय के भेद हैं। अत: सबको गौण करके.... अभाव करके नहीं कहा है। है, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़ करके, **सर्व भेद गौण हो गये हैं — ऐसे एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर....** आहाहा! यह परोक्ष और प्रमाण का भेद का ज्ञान विकल्प से होता है, परन्तु उसको गौण करके, उसका लक्ष्य छोड़ करके भगवान आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर है, अभेद चीज है, उसका अनुभव करने पर यह सब गौण हो जाते हैं, उसकी मुख्यता नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया? अरे भाई! परमात्मा का मार्ग बहुत सूक्ष्म है और यह सम्यग्दर्शन क्या चीज है तथा कैसे प्राप्त हो? बड़ी सूक्ष्मता है, भाई! यह कोई ऐसी

धूमधाम, हा-हो, हो-हा, गजरथ चलाया, और रथ बनाया और पचास-पचास लाख का मन्दिर बनाया; इसलिए धर्म हो गया (— ऐसा नहीं है।)

श्रोता : वह भी एक रास्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं; भटकने का रास्ता है। कहा नहीं? मुनि को जो आत्मा का अनुभव है, शान्ति है, तीन कषाय का अभाव है, तीन कषाय का — उसको भी जो शुभराग आता है, वह जगपन्थ है। समझ में आया? ऐसा बताया था। कहा है न? जगपन्थ! मोक्षद्वार, मोक्षद्वार, (समयसार नाटक!) लो, यही पृष्ठ आया, चालीसवाँ श्लोक 'ता कारण जगपंथ यह...' आहाहा! आत्मा के आनन्द का अनुभव है, सम्यग्दर्शनसहित चारित्र भी है परन्तु जो पंच महाव्रत का विकल्प आता है.... आहाहा! वह 'ता कारण जगपंथ यह...' वह राग का विकल्प जगपंथ अर्थात् संसार का पंथ है। आहाहा! 'ता कारण जगपंथ यह उत्त शिवमारग जोग' अन्तर में-आनन्द में विकल्परहित का रमण, वह शिवमार्ग है। यह (विकल्प) संसार है। मुनि — सच्चे सन्त की बात है; अकेले द्रव्यलिंगी नहीं। जिसको आत्मा का ज्ञान हुआ है, अनुभव है और स्वरूप में रमणता का चारित्र भी है (परन्तु) पूर्ण नहीं; इस कारण पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, भक्ति आदि-भगवान की विनय आदि का विकल्प आता है, परन्तु वह जगपंथ (है)।

श्रोता : पण्डित बनारसीदास ने लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश में है (समयसार) कलश में से निकाला है।

सेठ ऐसा कहते हैं कि यह पण्डित का कथन है न! परन्तु यह कलश में से निकाला है। आहाहा! सेठ स्पष्ट कराते हैं। आहाहा! बनारसीदासजी (ने यह) उसमें से — राजमलजी की टीका में से यह समयसार नाटक बनाया है। राजमलजी की टीका है न, कलश की (टीका है न) उसमें से यह बनाया है। अक्षर-अक्षर उसमें से लिया है। राजमल! जैनधर्म का मर्मी! उन्होंने यह बनाया है, उसमें से यह समयसार नाटक बनाया है। आहाहा! अरे...रे! उन्हें महंगा पड़ता है। महंगा कहते हैं या क्या कहते हैं? महंगा पड़ता है, इसलिए पण्डित का है — ऐसा करके निकाल देते हैं। अरे भगवान! यह तो बहिन का

वचन (बहिनश्री के वचनामृत) है न, दोपहर को पढ़ते हैं, उसकी भी आलोचना हो गयी। आहाहा! परन्तु बहिन ने वह अन्तर में से-अनुभव में से वाणी आयी, वह वाणी की है। टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग (प्रकाशक) बनाया तो मोक्षमार्ग (प्रकाशक) क्यों नहीं पढ़ते? समझ में आया? तो वाणी बहिन की आयी है, वह सार, सार, सार तत्त्व से भरी आयी है। विस्तार था वह तो छोड़ दिया तो उस तत्त्व की बात वह यथार्थ दृष्टि अनुभवपूर्वक आयी है। अरे प्रभु! उसकी आलोचना करे कि चम्पाबेन को चढ़ा दिया और पैर पड़ेंगे और ऐसा करेंगे.... अरे प्रभु! क्या करता है? भाई! पण्डिताई काम नहीं करेगी। प्रभु! समझ में आया? कैलाशचन्दजी ने लिखा है, लिखा है? पता है! प्रभु! यह अनुभूति क्या चीज है नाथ तेरे। आनन्द के अनुभव में जो बात आती है, उसमें जो बात आती है, वह यथार्थ बात है। चाहे तो सिद्ध का सम्यक्त्व हो, और चाहे तो तिर्यंच का सम्यक्त्व हो। है? यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। दोनों ही समान हैं, स्थिरता — चारित्र में अन्तर है परन्तु दृष्टि का विषय और जो दृष्टि का ज्ञान यथार्थ हुआ, उसमें जो कथन आता है, वह यथार्थ कथन आता है। आहाहा! क्या हो? लोगों को कुछ पण्डिताई का बहुत पढ़े हों और गुने न हों, बोलना आया बहुत.... तो वह ज्ञान है (ऐसा मानते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा.... कहा न प्रमाण के भेद को गौण करके, आहा....! **एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर....** एक जीव की अनुभूति, त्रिकाली स्वभाव की अनुभूति होने पर वे भेद, **वे अभूतार्थ हैं....** प्रमाण का भेद झूठा है तो राग और दया, दान के विकल्प की क्या बात करना? आहाहा! भाई! मार्ग कठिन है। भावदीपिका में... पण्डितजी! भावदीपिका में दीपचन्दजी लिख गये हैं दीपचन्दजी! भावदीपिका — अध्यात्म पंच संग्रह है, यहाँ नहीं आया? और एक भावदीपिका है, उसमें लिखा है कि अरे...रे! मैं देखता हूँ तो लोगों को आगम अनुसार श्रद्धा मुझे नहीं दिखती, लोग हैं नाम धरानेवाले श्रावक और साधु परन्तु आगम अनुसार जो श्रद्धा, वह हमें उनके पास नहीं दिखती और मैं सत्य कहता हूँ तो सुनते नहीं, यह क्या? यह क्या? तो मैं लिख जाता हूँ कि मार्ग यह है। भावदीपिका में है। पण्डितजी! भावदीपिका में है, सब देखा है न? हजारों शास्त्र देखें हैं। हजारों, हजारों क्या लाखों शास्त्र देखें हैं यहाँ तो। (संवत्) ६५ की साल से सारा अभ्यास तो है। ६५ हैं? (संवत्) ३५ और ४, ३९ और ३०, ६९.... ७० में एक कम।

इसमें तो हम दुकान पर हम शास्त्र अभ्यास करते थे, घर की-पिताजी की दुकान थी, पहले निवृत्ति बहुत थी परन्तु स्थानकवासी थे, श्वेताम्बर थे, स्थानकवासी। आहाहा!

उसमें जहाँ यह समयसार (संवत्) ७८ में मिला आहा...! वाह! 'सिद्ध होने की चीज यह है' कहा, मैंने तो सम्प्रदाय में कह दिया था। दामोदर सेठ विरुद्ध था। तत्त्व से अनजान, उसे भी कह दिया — शरीररहित होने की यह चीज है परन्तु उस समय तो उसमें (सम्प्रदाय में) थे तो आपत्ति नहीं न! अपने महाराज हैं न? परन्तु (सम्प्रदाय) छोड़ देंगे इसका उन्हें कुछ पता नहीं था। वह बड़ा सेठ था, बड़े अधिकारी उसके पास आते थे, उस समय दस लाख... २५-३० गुना गिनो अभी इतने पैसे इतने.... घर पूरा, अपने में एक अच्छा गाँव दस हजार की आमदनीवाला, उस समय दस हजार अर्थात् पच्चीस गुना गिनो, ऐसे गाँव-घर में थे। ग्रामस्वामी था। चालीस हजार की आमदनी थी, स्थानकवासी है दामनगर। वह हमारे सम्प्रदाय का गाँव था, तो वह ऐसा कहता था। आहाहा! भगवान का दर्शन करे तो वह तो मिथ्यादृष्टि हो तो मूर्ति का दर्शन करे। (हमने) कहा नहीं; सम्यग्दर्शन होने के बाद भावश्रुत आता है, वह भगवान का दर्शन करता है। समझ में आया? आहाहा!

शास्त्र तो वहाँ भी बहुत थे, उसके पास दिगम्बर शास्त्र थे तो वहाँ पहले पढ़े (संवत्) ७८ में, तो उसको कहा — सेठ! यह शास्त्र सिद्ध होने की चीज है। यह अशरीरी होने की चीज है। यह तुम्हारे ३२ शास्त्र और पैंतालीस (शास्त्र) है, हमने तो सब देखे थे। करोड़ों श्लोक देखे थे परन्तु उस समय तो उसमें (सम्प्रदाय में) थे। तब हमारे महाराज हैं कोई आपत्ति नहीं, कुछ भी बात करेंगे जो यदि विशेष हमको विरोध तो हम सम्प्रदाय छोड़ देंगे, उसको — सेठ को-सबको मेरा डर लगता था, मैं कोई आ गया इसलिए मैं सम्प्रदाय को मानता हूँ — ऐसी चीज नहीं है। मुझे तो अन्दर में यथार्थ आना हो, तो मैं मानता हूँ तो वे ऐसा कहते थे कि नहीं, यही मार्ग सच्चा है। समयसार, बाद में सच्चा कहते थे। हम कहते थे। (उसने) बाद में भूल निकाली, समयसार में भी भूल है... छोड़ दिया न, बस! यह तो उसमें भी इस जीवतत्त्व में भूल है और अजीव में है और आस्रव में है.... तुमने देखा नहीं दामोदर सेठ? उसके लड़के की बहू नहीं, तुम्हारे यहाँ राजकोट? क्या नाम? यहाँ, वहाँ अपने मकान था न? उसके पीछे था। इन भाई

का मकान नहीं? उतरते थे, अपने स्थानकवासी, लाभूबेन और उस मकान में हम उतरते थे। पारेख का मकान, पारेख का मकान नहीं? वहाँ उतरते थे। उसके पीछे उसके पिता का मकान है। आहाहा!

यह वस्तु अलग, बापू! कहा। यहाँ कहते हैं कि दो प्रकार — परोक्ष और प्रत्यक्ष — ऐसा ज्ञान करने में आता है परन्तु वह बात अपने स्वरूप में जाने में उसकी कोई मदद नहीं। आहा! उसको भी गौण करके, है? **एक जीव के स्वभाव का अनुभव करने पर वे अभूतार्थ हैं....** झूठे हैं। आहाहा! यह प्रमाण की व्याख्या की। नय की व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)